राधास्वामी दयाल की दया

राधास्वामी सहाय

सतसंगियों से पुरजोर अनुरोध

परम पुरुष पूरन धनी हज़ूर महाराज

राधास्वामी दाता दयाल

के

शताब्दी भण्डारे

के अवसर पर

परम पूज्य दादाजी महाराज

द्वारा

फरमाया गया बचन

२७ दिसम्बर, १९९८

राधास्वामी सतसंग

हज़ूरी भवन

पीपल मण्डी

आगरा-३

राधास्वामी दयाल की दया

राधास्वामी सहाय

सतसंगियों से पुरजोर अनुरोध

परम पुरुष पूरन धनी हज़ूर महाराज

राधास्वामी दाता दयाल

के

शताब्दी भण्डारे

के अवसर पर

परम पूज्य दादाजी महाराज

द्वारा

फरमाया गया बचन

२७ दिसम्बर, १९९८

राधास्वामी सतसंग

हज़ूरी भवन

पीपल मण्डी

आगरा-३

परम पूज्य दादाजी महाराज

सतसंगियों से पुरज़ोर अनुरोध

(हज़ूर महाराज के शताब्दी भण्डारे के अवसर पर दादाजी महाराज द्वारा फरमाया गया बचन)

राधास्वामी मत के अनुयायियों के लिये यह वर्ष अत्यधिक महत्वपूर्ण है। परम पुरुष पूरन धनी हज़ूर महाराज के शताब्दी भण्डारे पर राधास्वामी सतसंग हज़ूरी भवन में विशेष सतसंग और विशाल भण्डारे का आयोजन किया जा रहा है। परन्तु यह समय केवल उत्सव का ही नहीं है, बल्कि हर सतसंगी के लिये आत्म परीक्षण का भी है कि कहाँ तक हज़ूर महाराज के उपदेशों और आदेशों का जिन्दगी में उसने पालन किया। हज़ूर महाराज ने तो प्रेम और भक्ति का भण्डार खोला है। देखने की बात यह है कि उस भण्डार में से एक किनका भी हिस्से में आया है कि नहीं, और इस बढ़ते हुये भौतिकवाद और कलयुग के प्रकोप के कारण, मत के अनुयायियों ने अपने आप को इस प्रेम मार्ग से कितना विलग किया? क्यों किया? और कैसे किया?

हज़ूर महाराज के ज़माने के सतसंगियों में प्रेमी बहुत और कपटी नहीं के बराबर थे और आज इसके ठीक विपरीत स्थिति है। इसलिये सब सतसंगियों और अनुयायियों को बड़ी गंभीरता से इस पर केवल विचार ही नहीं करना चाहिये, बल्कि हज़ूर महाराज के चरनों में गहरी प्रार्थना करना चाहिये कि समय रहते उनकी जीवनशैली में क्रांतिकारी परिवर्तन आये और अपने आप को हज़ूर महाराज के उपदेशों और आदेशों के अनुसार ढालने का प्रयास करें। यह नहीं भूलना चाहिये कि हज़ूरी दया अंग-संग है। हम ज़रा सा भी उनके बताये हुये मार्ग पर चलेंगे तो वे रक्षा और सम्हाल करेंगे और प्रेम की भरपूर दात लुटा देंगे।

हज़ूर महाराज के जीवन चरित्र एवं बचनों का सही अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि सतसंगियों को अपनी रहनी गहनी दुरुस्त करना अत्यंत आवश्यक है। आजकल व्यक्तिगत तनाव बढ़ते जा रहे हैं। जीवन-मूल्यों में गिरावट आई है। स्वार्थपरता बढ़ती जा रही है। आर्थिक परिस्थितियाँ विषमतम हो रहीं हैं। आतंक छाया हुआ है और

विघटनकारी तत्व उभर रहे हैं। कलयुग के प्रकोप के कारण जीव बहुत दुर्बल हो गया है। पीड़ा और उत्पीड़न ने विकराल रूप धारण कर लिया है। इन परिस्थितियों से सतसंगी भी अछूता नहीं बचा है। हज़ूर महाराज का चिन्तन, विचार, उपदेश व आदेश आज और भी अधिक प्रासंगिक हो गये हैं।

हज़ूर महाराज ने मध्यम मार्ग अपनाया है - यानी न तो गृहस्थ छोड़कर वैरागी होने का आदेश है और न ही गृहस्थ में रहकर संसार में इस कदर घुल मिल जाने को ही सही कहा है कि जिसमें अपने जीव के कल्याण की सुध ही न रहे। उन्होंने निर्देश दिया है कि अपना भजन, ध्यान, सुमिरन नित्त करना चाहिये, सतसंग रोज करना चाहिये, परमार्थी चर्चा करनी चाहिये और राधास्वामी दयाल की महिमा का गुणानुवाद करना चाहिये। यह भी कहा है कि भक्ति-भाव हर दम बरतना चाहिये यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल का हरदम भरोसा रखना चाहिये, उनको हरदम सिर पर सवार रखना चाहिये और जो कुछ भी काम करें, उनकी दया के आसरे और सहारे ही करना चाहिये।

हज़ूर महाराज का यह आदेश है कि हर सतसंगी को अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों को निभाना, केवल अपने अधिकारों के लिये जूझने से ज्यादा महत्वपूर्ण है। व्यर्थ के वाद-विवादों में नहीं फँसना चाहिये, पर सिद्धांतों से समझौता भी नहीं करना चाहिये। दुनिया में व्यवहार करना मना नहीं है और एक व्यक्ति को अपनी जिन्दगी में अपने दायित्वों को निभाने के लिये प्रयास जरूर करना चाहिये, लेकिन परिणाम मालिक की मौज पर छोड़ देना चाहिये। हज़ूर महाराज ने निष्क्रियता नहीं, सक्रियता का पाठ पढ़ाया है। यदि परिणाम मौज पर छोड़ देंगे तो निराशा हाथ नहीं लगेगी। जब निराशा होती है तो तनाव बढ़ता है और तनाव बढ़ने से व्यक्ति संतुलन खो देता है। हज़ूर महाराज का यह स्पष्ट आदेश है कि हर हाल में व्यक्ति को संतुलन बनाये रखना चाहिये।

ऐसी रहनी गहनी तभी संभव है, जब सरस अभ्यास किया जायेगा और सरस अभ्यास के लिये सतसंगी को सच्ची दीनता के साथ बर्ताव करना पड़ेगा और अपने आपे को झाड़ना पड़ेगा, और भी जब सतसंगी मालिक को हमेशा याद करेगा, उनकी विरह में तड़पेगा, तब

सुरत शब्द को पकड़ेगी और फिर आप से आप दुनिया के बन्धन ढीले होंगे। पाँचों दूतों का असर कम होता दिखाई पड़ेगा। दयालुता का अंग आवेगा और शील, क्षमा उसके सहज स्वभाव हो जायेंगे।

अक्सर देखने में आता है कि सतसंगी नियम से भजन, ध्यान भी करते हैं, पाठ भी करते हैं, हज़ूर की महिमा भी गाते दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उनका व्यवहार आदर्श सतसंगी का सा नहीं होता। कभी-कभी तो वे सीमा को पार कर जाते हैं। विरोध के घाटे पर आ जाते हैं और क्रोध में भड़क उठते हैं, या कि अपना पक्ष लेते हुये दूसरे व्यक्ति को सुनना भी नहीं चाहते और यहाँ तक कि एक सतसंगी दूसरे सतसंगी को नीचा दिखाने का प्रयास भी करता है। यह पूर्ण रूप से हज़ूर महाराज के आदेश के विपरीत कार्रवाई है। ऊपर से हज़ूर महाराज की महिमा गाना और फिर इन विकारी अंगों में भी बरतते दिखाई पड़ना, यह विरोधाभास है।

हज़ूर महाराज के समय में भी सेवा को लेकर आपस में सतसंगियों में मनमुटाव हो जाता था। जैसे कि हाथ धुलाने की सेवा निश्चित थी, कोई नया सतसंगी आया और अँगोछा इत्यादि ले लिया और हाथ धुला दिया तो पहिला व्यक्ति रूठ जाता था। यह देख कर हज़ूर महाराज ने फरमाया कि सेवा में स्पर्धा नहीं होती और जो भी सेवा भाग से मिले, उसे गनीमत समझना चाहिये। किसी ऐसे व्यक्ति की सेवा छीनने की कोशिश नहीं करनी चाहिये जो पहिले से उस सेवा को कर रहा है, बल्कि और कोई सेवा शुरू कर देनी चाहिये। पहिले व्यक्ति को सीख देते हुये हज़ूर महाराज ने कहा कि यदि उमंग और जोश में किसी ने उसकी सेवा ले ली तो इसके कारण उसके प्रति और भी प्यार बढ़ना चाहिये न कि उससे हसद पैदा हो। मालिक को वही सेवा मंजूर होगी जो अहंकार रहित है। सेवा में आपा ठानना, अफसरी झाड़ना और दूसरे सेवकों के प्रति अनुदार बर्ताव करना हज़ूर महाराज के आदेशों के विपरीत है।

परशादी और हार के मामले में पहिले और पीछे तथा सतसंग में आगे और पीछे बैठने पर स्पर्धा होती रही है। इस पर हज़ूर महाराज का फरमान था कि बचन अधिकारी-प्रति होते हैं। अतः किसी प्रेमी अभ्यासी से स्पर्धा करने की जरूरत नहीं है। जब तक उनके अन्दर उस

बचन-धार को पूर्ण रूप से समा लेने की क्षमता न हो, किसी को उतावलापन नहीं बरतना चाहिये। प्रेमी अभ्यासियों को यह सलाह दी जाती है कि जो व्यक्ति भक्ति में अपने से आगे है, उसकी स्वाभाविक तौर पर कदर करनी चाहिये, बल्कि अर्ज़-मारूज़ (बिनती-प्रार्थना) भी उसी के माध्यम से गुरु से करनी चाहिये।

प्रेमियों में कोई स्पर्धा नहीं होती। वो सब अपने प्रीतम के प्यारे हैं और प्रीतम का प्यार असीमित है जिसे बाँधा नहीं जा सकता। एक सतसंगी को दूसरे प्रेमी सतसंगी की रहनी-गहनी देखकर वैसे ही बर्ताव करने की चाह तो ठीक है, लेकिन किसी भी हालत में होड़ करने का इरादा नहीं करना चाहिये। प्रीतम को अपने प्रेमियों की अन्तर और बाहर की पूरी-पूरी जानकारी रहती है। अगर किसी में दर्शन की चाह होगी तो वह स्वयं ऐसी परिस्थिति पैदा करते हैं कि उसकी चाह पूरी हो। उसे निपट उनकी दया के आसरे अपनी चाह रखने की आदत रहनी चाहिये।

दीनता, शालीनता और नम्रता एक सतसंगी के आचरण में तभी प्रगट होंगे, जब न केवल वह राधास्वामी दयाल की पूर्ण रूप से सरन लेगा, बल्कि उनका डर पूर्ण रूप से उसके दिल में समा जावेगा। जब वह समझेगा कि जो कुछ वह कर रहा है, वह हज़ूर महाराज देख रहे हैं; जो वह कह रहा है, वह हज़ूर महाराज सुन रहे हैं और उसकी हर कमजोरी की जानकारी उनको है। तब दुर्व्यवहार करने पर उसको वास्तविक तौर पर पछतावा आवेगा। वह झुरेगा और जिस सतसंगी से उसने दुर्व्यवहार किया है, उससे क्षमा माँगेगा। तभी मालिक राजी होंगे।

मालिक को कपट बिलकुल नापसंद है। अन्दर में कुछ, बाहर कुछ - यह भक्त का रूप नहीं है। इसलिये हर सतसंगी को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उससे कोई ऐसी करनी न बने जिससे राधास्वामी दयाल, हज़ूर महाराज या समकालीन गुरु अप्रसन्न होवें। हज़ूर महाराज ने खुद फरमाया है कि जो मालिक की प्रसन्नता चाहते हो तो दुनियादारों की प्रसन्नता का ख्याल छोड़ो। यदि सतसंगी भी दुनियादारों का सा बर्ताव करेगा तो उसे श्रेष्ठ कैसे माना जा सकता है। साफ हिदायत है कि जो कुछ सीखे उस पर अमल भी करे।

आजकल लोग अनुभव नहीं जगाते और राधास्वामी मत के ग्रंथों को भी ऐसे पढ़ते और रटते हैं जैसे कि वेद, शास्त्र, उपनिषदों, ब्राह्मणों,

सूत्रों, स्मृतियों, पुराणों आदि का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करने वाले वाचक ज्ञानी, जो सब कुछ पढ़ने के बाद भी व्यवहार में निपट दुनियादारों का सा आचरण करते हैं, क्योंकि किसी अनुभवी या नेष्ठावान अभ्यासी का संग नहीं किया है। यह वाचक ज्ञान एक बड़ा अड़ंगा है, और अफसोस की बात है कि राधास्वामी मत के अनुयायियों में भी वाचक ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। स्वामीजी महाराज या हज़ूर महाराज की बानी अनुभवी बानी है, जो बिना आंतरिक अनुभव प्राप्त किये समझी ही नहीं जा सकती। परिणाम यह है कि अपने-अपने गुटों की बातों को लेकर एक दूसरे पर छींटा-कशी, आलोचना, नीचा दिखाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। आजकल राधास्वामी मत के अनुयायियों के व्यवहार में अहंकार दिखाई पड़ता है, प्रेम सूखता दिखाई देता है, विरोध का घाटा बढ़ता ही दीखता है, ईर्षा फैली हुई है, और अक्सर यह भी देखने में आया है कि एक सतसंगी किसी दुनियादार से तो बहुत मोहब्बत से बात करता है, लेकिन दूसरे सतसंगी से रोष से ही बात करता है।

बहुत से राधास्वामी मत के अनुयायी दूसरे मत वालों को अपने से ओछा और हीन समझते हैं, चाहे उसकी स्वयं की रहनी-गहनी एक आदर्श सतसंगी के मुआफ़िक है या नहीं और स्वयं चाहे कुछ अभ्यास न करते हों, केवल वाचक ज्ञानी हों। उनको समझना चाहिये कि यदि उनकी ऐसी ही रहनी-गहनी और समझ है तो वे किसी अन्य मत के ऐसे नेष्ठावान व्यक्ति से जो अपनी भक्ति में लगा है, अपनी श्रेष्ठता का दावा किस आधार पर कर सकते हैं? खाली बातें बनाने से, अहंकार करने से, राधास्वामी मत की किताबों को रट लेने से या दिखावे की कार्यवाही करने से वास्तविक परमार्थी नहीं हो जाते हैं। नर-देही के भागी वो भले ही हो जायें, क्योंकि राधास्वामी नाम का सुमिरन किया है, लेकिन उद्धार के रास्ते पर उनकी चाल आगे नहीं बढ़ेगी, जब तक कि राधास्वामी दयाल की सरन लेकर निष्कपट भाव से दीनता के साथ, गुरु की भक्ति और सुरत-शब्द-योग का अभ्यास नहीं किया जायेगा।

यह करनी का भेद है, नाहिं बुद्धि विचार।
बुद्धि छोड़ करनी करो, तो पाओ कुछ सार।।

आजकल लोग नाममात्र के ही सतसंगी रह गये हैं। प्रेम और दीनता का व्यवहार तो करते नहीं, कोरा सतसंगी होने का अहंकार करते

हैं। उनकी कथनी और करनी में बड़ा भारी अंतर दिखाई पड़ता है। कपट का व्यवहार करते हैं और कभी-कभी नीचता की नीची से नीची सीढ़ी तक उतर जाते हैं। हज़ूर महाराज तो राधास्वामी दयाल थे, वह भली-भाँति जानते थे कि आचरण में ऐसी गिरावट आ सकती है। इसलिये उन्होंने अपनी बचन बानियों में, सतसंगियों को सीख देने के लिये, अपना नैतिक आचरण सुधारने के लिये, आगाह किया है और सही मार्गदर्शन और आदेश दिये हैं।

इस पुस्तक के निर्माण का मुख्य उद्देश्य एक तरफ तो हज़ूर महाराज के द्वारा जगत के जीवों पर किये गये उपकार - यानी जगत के उद्धार की मौज, राधास्वामी नाम का प्रगट करना, कसूरों का ख्याल न करके दया और मेहर अत्यधिक करना, हर एक की बिगड़ी को बना देना, शील, क्षमा, दीनता और प्रेम की दात बख़्शना - इन सभी बातों की याद दिलाना है। दूसरी ओर उद्देश्य यह भी है कि एक सतसंगी को बताया जाये कि हज़ूरी आदेशों के संदर्भ में उसकी रहनी-गहनी कैसी होनी चाहिये - उसका व्यवहार उच्च कोटि के अभ्यासियों के प्रति क्या हो, एक प्रेमी सतसंगी के प्रति क्या हो और आपस में सामान्य सतसंगियों के प्रति कैसा हो और सामान्य जीवों के साथ कैसा हो। जग व्यवहार में भी एक सतसंगी की खास पहिचान दीनता और शालीनता से ही होनी चाहिये, शिष्टाचार में कोई कमी परिलक्षित नहीं होनी चाहिये। क्रोध एवं आवेश सतसंगी के लिये अत्यधिक अशोभनीय हैं।

अक्सर यह देखने में आया है कि कुछ लोग पिछले संतों या सतगुरु वक्त की इस्तेमाल की हुई चीजों को बिना उनकी आज्ञा के या चोरी छिपे ले जाते हैं। उन्हें यह स्पष्ट समझना चाहिये कि यह चोरी ही है और उसकी गिनती चोरों में ही होगी। ऐसे लोग दंड के भागी होते हैं तथा ऐसी वस्तु से कोई परमार्थी लाभ नहीं मिलेगा और वे दया मेहर से महरूम रहेंगे, क्योंकि उस वस्तु से परमार्थी धार खिंच जाती है और यह हरगिज परशादी में दाखिल नहीं है।

हज़ूर का दर्शन प्रेम पर आधारित है। अपना प्रीतम प्यारा लगना चाहिये, प्रीतम को ही अपना मित्र, साथी, संगी समझना चाहिये और उनके प्रति ऐसा आकर्षण हो जैसे पतंगे को दीपक का, मीन को जल का या कमल को सूर्य का। प्रीतम के समक्ष न केवल पूर्ण समर्पण करना

है वरन् अपनी खुदी को भी मिटा देना है। पहले हज़ूर महाराज ने द्वय भाव रखा और धीरे-धीरे इस अनेकता से हटकर प्रीतम से एकाकार होने की बात कही है।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दोउ न समाय।।

यही प्रेमा भक्ति है। प्रेम तो मालिक की दात है और वह जाती आकर्षण है, जो सुरत का शब्द के प्रति है और भक्ति वह धार है, जो मालिक से मिलाती है। लेकिन इस भक्ति की धार के सम्मुख वही ठहर सकता है जो दीनता को अंगीकार करेगा। उसको प्रीतम की हर बात, हर अदा प्यारी लगेगी। यहाँ तक कि उनका क्षणिक गुस्सा भी प्यारा लगेगा।

वह तो ताड़ मार फटकारें।
मैं चरनन पर शीश चढ़ाऊँ।।

सतसंगियों के लिये आत्म परीक्षण का समय है, जबकि हम हज़ूर महाराज के निज धाम जाने की शताब्दी मना रहे हैं। हमें देखना है कि हमने अपनी रहनी-गहनी को हज़ूरी आदेशों के अनुसार कितना ढाला है। हमें समझना चाहिये कि जब प्रीतम प्यारा होता है तो प्रीतम से प्रीत करने वाले भी प्यारे लगते हैं।

जो मेरे प्रीतम से प्रीत करे।
मोहिं प्यारा लागे री।।

आजकल के सतसंगियों में उल्टी ही बात दिखाई पड़ती है, यानी जो प्रीतम से प्रीत करते हैं, उनके प्रति प्यार आने की जगह ईर्ष्या होती है कि यह इतना नजदीक कैसे पहुँच गया। ऐसे लोग कभी-कभी किसी नये सतसंगी का सतसंग में टिके रहना दूभर कर देते हैं। किसी को पुराना सतसंगी होने का अहंकार है तो किसी को अभ्यासी होने का। किसी को कभी कृत्रिम शब्द को सुनकर अहंकार आ जाता है और एक भ्रम पैदा हो जाता है कि उनका साक्षात्कार कुल मालिक हज़ूर महाराज राधास्वामी दयाल से हो गया है। इस भ्रमजाल में वे उच्चकोटि के अभ्यासियों की भी अवहेलना कर देते हैं। यहाँ तक कि अपने रक्षक और पोषक उस देह-स्वरूप माध्यम की भी अवहेलना कर देते हैं, जिसके द्वारा राधास्वामी दयाल की दया पाते हैं। उसी से झगड़ बैठते हैं। यह

आपे के अन्दर आपे की उड़ान है। इसलिये सतसंगी को बोलने से पहिले तोलना चाहिये –

बोली तो अनमोल है, जो कोइ जाने बोल।
हिये तराजू तोल कर, तब मुख बाहर खोल।।

– – – – –

मीठी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।।

जिसको संतों ने दुनियादारी कहा है वह कहीं बाहर ढूँढ़ने की जरूरत नहीं है, खुद अपने में देखना है। वह मन का ही एक अंग है, जिसमें स्वार्थ, खुदगर्जी, केवल अपनी चिन्ता या केवल उन्हीं लोगों से सहानुभूति जिनसे हम मोह के बंधनों से बँधे हैं या जिनसे हमारा काम अटका है, सम्मिलित हैं। फिर अपने स्वार्थ के लिये नीचता की सीढ़ी पर उतर कर व्यवहार करना, जानबूझ कर दूसरों को दुख पहुँचाना, दूसरों का शोषण करना, हक़तलफी करना या किसी की मान–हानि करना, यह सब दुनियादारी में शामिल हैं। अगर यह सब दोष सतसंगियों में भी पाये जाते हैं तो दुनियादार और सतसंगियों में क्या अन्तर हुआ?

देखने में आता है कि सतसंगी व्यापक पैमाने पर इस हज़ूरी आदेश की अवहेलना करते हैं और कभी–कभी तो सतसंगियों का दुनियादारी का व्यवहार देखकर शर्म महसूस होती है। सतसंगियों को आगाह किया जाता है कि इस दुनियादारी के अंग से जितनी जल्दी और जिस कदर हो सके बचाव करें और इसमें न बर्तें। मालिक के प्रेम को और मालिक के प्रेमियों के साथ व्यवहार को ही अपने जीवन में मुख्यता दें। यहाँ एक बात और कही जाती है कि तुनक मिज़ाज़ी और कान का कच्चापन यानी दूसरों के कहने पर किसी व्यक्ति और घटना को सही समझ लेना और किसी से विरोध ठान लेना, यह महामूर्खता है, जो दुनियादारों को भी शोभा नहीं देती, फिर सतसंगियों को कैसे दे सकती है।

हज़ूर महाराज ने सतसंग पर बल दिया है, सतगुरु के संग को सतसंग कहा है और यह भी कह दिया है कि जहाँ राधास्वामी दयाल की बानी का पाठ हो, उनके बचन पढ़े जायें, बिनती और पुकार हो या

परमार्थी चर्चा हो, वह भी सतसंग में शामिल है। यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि परमार्थी चर्चा निष्पक्ष ढंग से करनी चाहिये। अपने विचारों को ज़बरन दूसरों पर थोपना, यह सही नहीं है। दूसरे की भी सुनना चाहिये। एक सतसंगी का दृष्टिकोण बहुत व्यापक होना चाहिये, किसी किस्म की संकीर्णता सतसंगी को शोभा नहीं देती। राधास्वामी मत के अनुयायियों को हिदायत है कि वो सच्चे प्रेमी और अभ्यासी सतसंगियों के साथ मेल-जोल बढ़ायें।

संग का भारी असर होता है। हज़ूर महाराज ने स्पष्ट कहा है कि अगर कुसंग करोगे तो न तो सतसंग में बैठने का मन करेगा, न अन्तर्मुख अभ्यास ही बनेगा और चित्त ऊपर की तरफ उन्मुख होने के स्थान पर, नीचे विकारी अंगों की तरफ मुड़ेगा। संग दोष एक बहुत बड़ा विघ्न बताया है। निपट नीच व्यक्तियों का कुछ घंटे भर का संग भी किसी के परमार्थ को चौपट कर सकता है। इसके विपरीत गुरु या किसी प्रेमी का क्षण भर का संग भी चित्त निर्मल कर सकता है।

बंदगी भजन करे सौ बरसा।
गुरु का संग दुघड़िया बढ़का।।

हज़ूर महाराज ने इसे विस्तार से बताया और कहा है कि हर व्यक्ति से धारें निकलती रहती हैं। संत सतगुरु से निकलने वाली धार महानिर्मल और विशेष चैतन्य वाली होती हैं। साध और प्रेमी जन से निकलने वाली धारें भी चैतन्य और निर्मल होती हैं। लेकिन निपट दुनियादार और विकारी अंगों में बरतने वाले लोगों से निकलने वाली धारें बहुत मलीन होती हैं। एक व्यक्ति जब लोगों से व्यवहार करता है तो उसकी धार दूसरे की धार से मिलती हैं और धारों का आदान-प्रदान होता है। यदि किसी उच्च परमार्थी व्यक्ति से मिलेगा तो उसकी निर्मल धार चित्त को शुद्ध करेगी और चित्त को ऊपर की ओर मोड़ेगी और यदि किसी विकारी और दुनियादार व्यक्ति से व्यवहार करेगा तो उसकी मलीन धार चित्त में विकार पैदा करेगी और नीचे की तरफ मोड़ेगी। इसलिये सतसंगी को ध्यान रखना चाहिये कि अपना व्यवहार परमार्थी व्यक्तियों से, सतसंगियों से ही मुख्यतया रखे। यदि दुनिया के कार्यवश उसे किसी कुसंगी से व्यवहार करना पड़ रहा है, तब उसको ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी परिस्थिति में उसके संग का असर, अपने

अन्तःकरण पर न हो। हज़ूर महाराज ने इसके लिये यह उपाय बताया है कि ऐसा संग होने पर अधिक सुमिरन और ध्यान करना चाहिये और दुगुना अभ्यास करना चाहिये।

आजकल सतसंगी कुसंग से अपना बचाव नहीं कर पा रहे हैं। अभ्यासियों को संग-दोष से बहुत बचना चाहिये। यहाँ तक कि अपने परिवार में भी परमार्थ से विपरीत चाल चलने वाले पुरुष या महिला हों तो उनके समक्ष झुकना नहीं चाहिये। अलग रह कर अपना बचाव करना श्रेयस्कर है। बहुत से लोग अपने को सतसंगी कहते हैं, लेकिन बहुत लापरवाही से कुसंगियों के साथ घुलते मिलते हैं, कहीं भी जा कर खा लेते हैं या किसी भी तमाशे में शामिल हो जाते हैं। ऐसे लोग सतसंगी नहीं कहे जा सकते हैं। मन, इन्द्रियों और विकारों में ही हमेशा बरतना और फिर यह कहना कि हम सतसंगी हैं क्योंकि हमने राधास्वामी मत का उपदेश लिया है, यह साबित करता है कि न तो उनको परमार्थ की कुछ समझ आई, न ही राधास्वामी मत को कुछ समझा और न ही सतगुरु के संग का कुछ फायदा ही उठाया। ऐसे लोगों से सतगुरु और प्रेमी जनों को तकलीफ ही होती है, क्योंकि वह अपने मलीन कर्मों का भार सतगुरु और प्रेमी जनों पर डाल देते हैं। अभ्यासी और प्रेमी सतसंगियों को ऐसे लोगों के संग से बहुत बचना चाहिये।

राधास्वामी मत में समकालीन गुरु की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया गया है, लेकिन साधारण जिज्ञासुओं के लिये पूर्णरूपेण गुरु की पहचान कर लेना दुष्कर कार्य है। इसीलिये परम पुरुष पूरन धनी हज़ूर महाराज ने इस गुत्थी को भी बड़ी सरलता और सुगमता से सुलझा दिया है। हज़ूर महाराज का स्पष्ट आदेश है कि जो राधास्वामी मत के सिद्धांतो को समझकर उपदेश ग्रहण करता है, उसे सर्वोच्च प्राथमिकता राधास्वामी दयाल को देनी चाहिये, यानी यह माने कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल हैं और राधास्वामी नाम ध्वन्यात्मक नाम है। जैसे-जैसे राधास्वामी दयाल के चरनों में उसकी प्रीत और प्रतीत गहरी होती जावेगी, आप से आप उसकी अनुभवी शक्ति जागेगी, वैसे वैसे ही उसको समकालीन गुरु की पहचान होती जावेगी और जब गुरु मिल जावेंगे तो उनकी दया से राधास्वामी दयाल की भी सच्ची गत-मत का पता चल सकेगा और फिर उनके साथ जैसा बरतावा करना चाहिये, कर सकेगा।

प्रेमपत्र राधास्वामी में उपदेशकों और उपदेशियों को हिदायत दी है, जिसमें एक बात तो उपदेशकों से साफ कह दी है कि उनको अपनी गुरुवाई अपने उपदेशी पर नहीं थोपनी चाहिये और अपने अधिकार से ज्यादा की सेवा अपने उपदेशियों से नहीं लेनी चाहिये। उपदेशियों से भी कहा है कि अपने उपदेशक को शुरू में कुल मालिक या संत सतगुरु की तरह नहीं समझना चाहिये। केवल अपने से बड़ा और आगे चलने वाला समझना चाहिये। जैसे-जैसे पहिचान आती जावेगी आप से आप गुरु में भाव आवेगा, भाव-भक्ति में बढ़ौती होती जावेगी और दया से फिर किसी भी परिस्थिति में गुरु में अभाव नहीं आवेगा।

प्रायः यह भी देखने में आता है कि लोग क्षणिक उमंग में बहुत भाव दिखाने लगते हैं। लेकिन थोड़ा सा भी दुनिया का कोई काम उनकी इच्छानुसार न हो, तो रूखे-फीके हो जाते हैं, अभाव में बर्तने लगते हैं या निन्दा करने लगते हैं। हज़ूर महाराज ने तो कहा है कि वक्त गुरु राधास्वामी दयाल के निज पुत्र और प्रतिनिधि हैं, प्रेम और आनन्द की लहर हैं। अतः ऐसे महापुरुष के लिये अभाव लाना या उनकी निन्दा करना अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। भाव वह है जो एक रस रहे और भक्ति वह है जो दिन-प्रतिदिन बढ़ती जावे।

अफसोस की बात है कि लोगों ने इस आदेश की अवहेलना की है। या तो लोगों ने गुरु की अनिवार्यता के मुद्दे को लेकर अनेकों केन्द्र पैदा कर दिये और हर उपदेशी अपने गुरु को राधास्वामी दयाल का अवतार मानने लगा या उसके विपरीत ऐसे टेकियों की जमात पैदा हो गई, जो सनातनी परम्परा को निभाते हुये किसी पिछले गुरु की टेक बाँधे हुये हैं और समकालीन गुरु के महत्व को समझना नहीं चाहते। दोनों बातें गलत हैं। इस गलती की वजह से राधास्वामी मत के सतसंगियों में आपस में प्रेम-भाव कम और अपने-अपने केन्द्रों की बड़ाई की बात अधिक होती है जिससे तनाव बढ़ता है, फिर कटुता बढ़ती है और झगड़े बढ़ते जाते हैं। यह बात भी सही है कि बिना वक्त के गुरु को माने अनुरागी सेवक का काम नहीं चल सकता है, इसलिये वक्त के गुरु को खोजना आवश्यक है।

बिन गुरु वक्त भक्ति नहिं पावे।
बिना भक्ति सतलोक न जावे।।

यह कहना उन जीवन कारन।
जिनके विरह अनुराग की धारन।।

लेकिन स्थिति यह है कि अगर किसी को जिज्ञासा होती है तो बजाय उसकी जिज्ञासा को शान्त करने के हर केन्द्र अपनी श्रेष्ठता को दर्शाता है और उसे खोज से विरत रखता है। इसलिये एक सरल मत और पंथ दुरूह होता जा रहा है। भौतिकवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। बाहरी आडम्बरों, ज़मीन, जायदाद, प्रचार, प्रसार को अधिक से अधिक महत्व दिया जाता है, और भक्ति, अभ्यास और नाम के सुमिरन को कम से कम।

हज़ूर महाराज ने स्पष्ट कहा है कि बिना अपने वक्त के गुरु से सम्बन्ध जोड़े, राधास्वामी दयाल का वस्ल प्राप्त नहीं हो सकता है। इसलिये एक खोजी, दर्दी के अन्तर में यही अभिलाषा होनी चाहिये कि उसको पूरे गुरु का संग प्राप्त हो। इस खोज को भी सरल बनाते हुये हज़ूर महाराज ने स्पष्ट किया है कि भाग्य से यदि संत सतगुरु मिल जायें तो अति श्रेष्ठ बात है। यदि वह न मिलें और साध गुरु मिलें तो भी उत्तम बात है और यह भी नहीं तो प्रेमी अभ्यासी का ही संग करे।

अभ्यासी कौन है, कौन नहीं, इसकी पहिचान कैसे हो, इसके बारे में हज़ूर महाराज कहते हैं कि कुछ दिन उनका संग करने से अन्तर अभ्यास में मदद मिलेगी, उनकी बचन बानी में असर होगा और उनका रूप, लक्षण और रहनी-गहनी आप से आप खोजी दर्दी की समस्या को हल कर देगी और स्वतः पहिचान हो जावेगी। अतएव राधास्वामी मत के हर अनुयायी को जो किसी भी केन्द्र से जुड़ा हो, यह जानना चाहिये कि खोज भी अन्तरी है, अनुभव भी अन्तरी है और संग भी अन्तरी है। जिस देह स्वरूप में शब्द गाज रहा होगा, ऐसा नहीं हो सकता कि सुरत उस पर वारी न जाये।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सुरत का आकर्षण तो होता है, लेकिन मन हावी होकर सच्चे गुरु के संग से विलग कर देता है। परिणाम यह होता है कि सब टेकी होते चले जाते हैं। टेक चाहे पिछले गुरु की हो, किसी केन्द्र की हो या संगठन की हो, टेक, टेक ही है।

विषयी संसारी और रागी।
इनको टेक न चहिये त्यागी।।

इनको नहिं उपदेश हमारा।
इनको जगत कामना मारा।।
कोइ कुटुम्ब कोइ धन आधीना।
कोइ कोइ मान प्रतिष्ठा लेना।।
मारे डर के टेक न छोड़ें।
वक्त गुरु में मन नहिं जोड़ें।।

हज़ूर महाराज ने सिर्फ प्रेम की टेक रक्खी है। जिस प्रकार प्रेमी किसी अवरोध की चिन्ता नहीं करता, इसी प्रकार एक खोजी को सच्चे गुरु को ढूँढ़ने में, किसी अवरोध की चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

जो अनुरागी विरही भाई।
भक्ति गुरु की उन प्रति गाई।।

इसीलिये हज़ूर महाराज ने किसी संगठन को बनाने की बात नहीं की, बल्कि भविष्य के संगठनों के लिये संकेत किया कि –

माया रूप नवीन धार कर, सतसंग में आई।

भक्ति को जब हज़ूर महाराज ने धारा कह दिया, तो जो धारा में तैरने लगा, उसको कोई कंटक, कोई रोड़ा रोक नहीं सकता।

राधास्वामी मत यद्यपि अधिकारी–प्रति है और अगले–पिछले संस्कारों की भी बात है, लेकिन जिसको सच्ची खोज होगी, उसको सच्चा गुरु इसी जन्म में मिलेगा और अन्तर रहा तो जन्म पर जन्म धारण करे जाये, सच्चा गुरु नहीं मिलेगा। सच्चे गुरु से इस दूरी को दूर करने के लिये एक धुरी है – मालिक से मिलने की अभिलाषा। स्वयं मालिक रूप हज़ूर महाराज ने कुल मालिक रूप स्वामीजी महाराज को ऐसे ही खोजा था। वे स्वयं फरमाते हैं कि जब स्वामीजी महाराज से उनकी भेंट हुई, *''दोपहर ११ बजे से शाम ६ बजे तक मैं सवाल पर सवाल करता रहा और वह जवाब पर जवाब देते रहे और जो कुछ भी मैंने उपनिषदों के अनुसार साधना करके ज्ञान हासिल किया था, उसे दिखा दिया और आगे का भेद भी दर्शा दिया।''*

राधास्वामी मत के अनुसार वक्त का गुरु राधास्वामी दयाल का प्रतिनिधि, निज अंश, निज धार या निज पुत्र होता है, इसलिये हर सतसंगी के लिये ऐसे गुरु को खोजना परम आवश्यक है और जब

भाग से वह मिल जावें तो उनसे ऐसे चिपके जैसे मधुमक्खी, जो शहद के लिये उड़ती फिरती है और उसके मिलने पर ऐसे चिपक जाती है कि छुड़ाये नहीं छूटती। इसलिये स्पष्ट किया जाता है कि प्रेमपत्र राधास्वामी को ठीक ढंग से पढ़ें और संशय दूर करा के राधास्वामी दयाल को मानें, गुरु खोजें और जब मिलें तो पूर्ण रूप से तन, मन, धन और सुरत से समर्पण करें।

क्या वारूँ गुरु पर आई, तन मन धन तुच्छ दिखाई।
सुर्त अंस तुम्हारी प्यारी, अब सरबस हुई तुम्हारी।।

हज़ूर महाराज ने यह भी स्पष्ट किया कि उसी की मुक्ति होगी, जो राधास्वामी दयाल में पूरा विश्वास करेगा और राधास्वामी नाम को ध्वन्यात्मक नाम मानेगा। इसलिये राधास्वामी दयाल के अवतरित होने के बाद और राधास्वामी नाम के प्रगट होने के बाद सत नाम के टेकियों का पूरा उद्धार नहीं हो सकता।

राधास्वामी नाम, जो गावे सोई तरे।
कल कलेश सब नाश, सुख पावे सब दुख हरे।।
ऐसा नाम अपार, कोई भेद न जानई।
जो जाने सो पार, बहुरि न जग में जन्मई।।

पिछले संतों ने सतनाम अनामी मानने वालों को सतलोक पहुँचाया। स्वामीजी महाराज ने भी सतनाम अनामी मानने वालों की अन्तर में चाल चलाई। लेकिन जब से राधास्वामी धाम का उपदेश, और राधास्वामी नाम का सुमिरन जारी हो गया, तो जब तक राधास्वामी नाम को नहीं मानेंगे, तब तक सतनाम के टेकियों का भी उद्धार नहीं होगा।

राधास्वामी गाय कर, जन्म सुफल कर ले।
यही नाम निज नाम है मन अपने धर ले।।

हज़ूर महाराज ने यह भी स्पष्ट किया है कि अगर किसी का शब्द खुल जाता है और उसी बीच में देह स्वरूपी गुरु गुप्त हो जाते हैं तो फिर उसको बाहर गुरु खोजने की आवश्यकता नहीं रहती। जिस देह स्वरूप में शब्द प्रगट होगा, अभ्यास में उसका संकेत उसे आप से आप मिल जावेगा। हज़ूर महाराज के अनुसार एक गुरु के उत्तराधिकारी की पहिचान भी उच्च कोटि के अभ्यासियों को ही होती है और एक उच्च

कोटि का अभ्यासी किसी जिज्ञासु को एक स्वरूप से दूसरे स्वरूप में हटाता नहीं है, बल्कि आन्तरिक अनुभव पर जोर देता है। अधिक से अधिक वह कहेगा कि मैंने संग करके देखा है, तुम भी देखो।

सतसंग को हज़ूर महाराज ने एक परिवार के रूप में माना है और कहा है कि सतसंगियों में सामान्य प्रीत होनी चाहिये और मुख्य प्रीत संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल के चरनों में। परिवार की परिभाषा भी हज़ूर महाराज ने बहुत व्यापक की है। जो हज़ूर राधास्वामी दयाल से प्यार करते हैं वह सब एक परिवार के हैं।

जो मेरे प्रीतम से प्रीत करे।
मोहि प्यारा लागे री।।

इस व्यापक परिवार की नींव ही मालिक का प्रेम है। ऐसे प्रेम के माहौल में जात-पाँत और दुनियादारी को कैसे जगह मिल सकती है। आश्चर्य की बात है कि राधास्वामी मत, जो प्रेम का मत है, के अनुयायी सब कुछ करें पर प्रेम ही न करें, अजब विरोधाभास है। क्या वो हज़ूर महाराज के द्वारा दी गई सतसंगी की परिभाषा के अनुसार सतसंगी कहे जा सकते हैं? हज़ूर महाराज ने कसरों को जताने की बात कही है -

"मेरी प्यारी सहेली हो, दया कर कसर जता दो री।"

इसके विपरीत लोग अपनी कसरों को तो देखते नहीं, दूसरे में ही सारी कसर देखते हैं और निन्दा करते फिरते हैं। वैसे एक जगह के वास्ते मना नहीं है कि कोई अपना है और वह मत के सिद्धांतों के अनुसार रहनी-गहनी नहीं अपना रहा है और कुछ ऐसा करता है जो अनुचित है, तो उसे अकेले में समझा देना चाहिये। अगर माने तो ठीक नहीं तो फिर उससे कोई गरज़ नहीं रखनी चाहिये।

हज़ूर महाराज का हुक्म है कि दूसरों के गुणों को देखना चाहिये, अवगुणों पर निगाह नहीं करनी चाहिये। यदि अवगुणों पर ही निगाह करनी है तो अपने अवगुणों पर करें।

मत देख पराये औगुन।
क्यों पाप बढ़ावे दिन दिन।।
पर जीव सतावे खिन खिन।
छोड़ अपने औगुन गिन गिन।।

देखा कर सबके तू गुन।
सुख मिले बहुत तोहि पुन पुन।।
मैं कहूँ तोहि अब गुन गुन।
तू मान बचन मेरा सुन सुन।।
अब कान धरो इन बचनन।
नहिं रोवोगे सिर धुन धुन।।

जो सतसंगी विपरीत परिस्थितियों में भी बरदाश्त बनाये रखते हैं, निन्दा सहते हैं, संतुलन खोते नहीं, वो हज़ूर की दया और मेहर के अधिकारी हैं। हज़ूर ने तो फरमाया है कि सौ बार गुनाह करोगे, माफी मिलेगी। लेकिन यह माफी उन्हीं के लिये है, जो हज़ूर के दरबार के दरबारी बने रहते हैं, निपट उनकी दया के सहारे रहते हैं, दीन अधीन बने रहते हैं और कड़वी से कड़वी बात सह लेने को तैयार हैं। फरमाया है कि निन्दा तो प्रेमीजन का ज़ेवर है।

इस बात का सभी सतसंगियों को भरोसा रखना चाहिये कि जो सही तरीके से परमार्थ समझेगा और जो तेलिया बुद्धि वाले की तरह अपनी रहनी-गहनी को ढालेगा, उस पर जरूर मालिक की दया होगी और वह इसी जन्म में अपना काम बना लेगा। वो भी अच्छे हैं जो मोतिया बुद्धि के हैं और जितना समझते हैं, उतना मानते हैं। लेकिन नमदा बुद्धि वाले तो दरअसल सतसंग के लायक भी नहीं हैं। फिर भी हज़ूर महाराज ने कहा है कि सतसंग में पड़े रहेंगे तो धीरे-धीरे उनका भी काम बन जावेगा।

पड़ा रहे तू संत के द्वारे, बनत बनत बन जाय।।

हज़ूर महाराज ने फरमाया है कि सतसंगियों को अपने हर काम को, चाहे स्वार्थ का हो या परमार्थ का, मौज पर छोड़ देना चाहिये, अधिक घबड़ाना या निराश नहीं होना चाहिये। कोई भी काम वो करें, उसमें मालिक की मौज और दया को प्रमुख रखे। दुनिया को फ़ानी कहा है। इस फ़ानी दुनिया में सच्चे सुख की तलाश करना या उसके लिये दौड़ भाग करना, लाभप्रद नहीं है। लेकिन अधिकतर सतसंगियों में देखा जाता है कि ज़रा-ज़रा सी बात पर विचलित हो जाते हैं। सहनशीलता का अभाव दीखता है। कभी-कभी विषम परिस्थितियों में निपट

दुनियादारों का सा व्यवहार करते हैं। हर किसी से आसरा और सहारा माँगने लगते हैं। इस तरह का स्वभाव हज़ूरी आदेश के अनुसार नहीं है। हज़ूर महाराज ने स्वयं अत्यधिक सहनशीलता व बरदाश्त का नमूना रखा है। समझने की बात है कि जब राधास्वामी दयाल को अपना रक्षक, पोषक, धीरजधर्ता, कारजकर्ता मान लिया, तो फिर गुरु और मालिक के अलावा कौन सहारा देने वाला है। लेकिन इस समझौती का अभाव प्रायः सतसंगियों में दिखाई देता है। सतसंगियों को चाहिये कि वह मालिक की दया का भरोसा रखें। वह स्वयं अपनी दया से परेशानी दूर कर देते हैं, सहूलियत बख़्शते हैं और बरदाश्त की ताकत भी उनको देते हैं, जिनका उनके सिवाय कोई नहीं है।

गुरु प्यारे की मौज रहो तुम धार।।
वे हर दम तेरी दया विचारें।
निस दिन रक्षा करें सम्हार।।
जिस विधि राखें उस विधि रहना।
शुकर की रखना समझ विचार।।

इसलिये निराश होने की जरूरत नहीं है। हज़ूर महाराज ने निराशावाद नहीं सिखाया है, आशावाद सिखाया है, और कहा है –

उसे फ़ज़्ल करते न लगती है बार।
न मायूस हो तू उम्मीदवार।।

मुक्ति के वैसे तो तीन मार्ग बताये गये हैं – ज्ञान, कर्म और भक्ति – और भक्ति को सबसे आसान कहा है, लेकिन व्यवहार में भक्ति का एक रस बने रहना बहुत कठिन है –

बहुत कठिन है डगर पनघट की।

*****

आब आँच सहना सुगम, सुगम खडग की धार।
नेह निबाहन एक रस, महाकठिन व्यवहार।।

इसलिये हर एक सतसंगी को, ताकि उसका भक्ति भाव कभी डिगमिग न हो, इस तरफ विशेष ध्यान देने की जरूरत है और जब मन बहुत अधीर हो, तो पोथी *प्रेम उपदेश* में से मौज से बचन निकालकर पढ़ लेना चाहिये। धीरे–धीरे लाभ होगा। मन काबू में आवेगा, इन्द्रियाँ

शिथिल होगीं, परमार्थ में चित्त लगेगा, नाम का सुमिरन बनेगा, ध्यान भी बनेगा और सुरत शब्द को पकड़ने लगेगी। हज़ूर महाराज ने वस्ल को और उसमें छिपे आनन्द को तड़प और विरह के सहारे रखा है, यानी जब तक विरह और तड़प नहीं होगी, वस्ल नहीं हो सकता।

सुरत और शब्द का ज़ाती रिश्ता हज़ूर महाराज ने बताया है, लेकिन यहाँ सुरत मन के आधीन है। मन की बात न स्वीकार करना ही क्रान्ति है और औजार इसका दीनता है, सरन है, और घट में चरन हैं। इसलिये अन्तर्मुखी कार्रवाई अधिक और बहिर्मुखी कम करना चाहिये। हज़ूर महाराज यहाँ तक फरमाते हैं कि जैसे-जैसे अभ्यास बनता जावेगा - परमार्थी को बाहरी परमार्थी व्यवहार से भी गरज नहीं रह जायेगी, उसको तो सिवाय एक प्रीतम के और कुछ नहीं सुहायेगा।

इस शताब्दी महोत्सव पर हर राधास्वामी मत के सतसंगी को दिल और जान से हज़ूर महाराज का शुक्राना करना चाहिये कि ऐसा सच्चा और पूरा राधास्वामी नाम प्रगट किया और जगत के उद्धार का सिलसिला जारी फरमाया। एक ओर खुद बेमिसाल गुरु भक्ति करके भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया, जिनके अनुसार अपनी रहनी-गहनी दुरुस्त करके एक सतसंगी अपना जन्म सुफल कर सकता है। यही नहीं, हज़ूर महाराज ने सतसंगियों को आदर्श जीवन व्यतीत करने का एक अनूठा ढंग बताया है - दुख और सुख में एक समन्वित दृष्टि कोण अपनाया जाये, मालिक की मौज को सर्वोपरि रखा जाये और उससे मुआफ़िक़त की जाये। सबसे आकर्षक बात तो यह है कि हज़ूर महाराज ने जो कुछ कहा है, वह स्वयं करके दिखाया है।

सतसंगियों से अनुरोध है कि हज़ूर महाराज के बताये मार्ग पर चलें तो हज़ूर महाराज परमार्थ की दौलत लुटा देंगे और निश्चित रूप से एक दिन अपने धाम में बासा देंगे, जहाँ हमेशा आनन्द ही आनन्द है और दुख और संताप का नाम व निशान भी नहीं है। हज़ूर महाराज ने जो मत चलाया है, वह प्रेम का मत है। हज़ूर महाराज स्वयं प्रेम रूप हैं और वास्तव में प्रेमियों के लिये हैं, प्रेमियों पर प्रगट हैं और प्रेमियों पर ही प्रगट होते रहेंगे। ऐसे प्रेम के शहंशाह हज़ूर महाराज राधास्वामी दयाल के चरनों में कोटि-कोटि प्रणाम।

राधास्वामी ! राधास्वामी ! राधास्वामी !